ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.20, No.1, Jan. – Mar., 2025/24

''कर्मयोग एवं ज्ञानयोग का सार भक्तियोग में निहित''

यशमन्त सिंह

https://doi.org/ 10.61410/ had.v20i1.224

सारांश

गीता में कर्मयोग का संदेश प्रमुखता से दिया गया है, जिसका भाव है अनासक्त भाव से कर्म करना या कर्मों के फल के प्रति आसक्ति रहित कर्म करना या कर्म फल का समर्पण ईश्वर को करते हुए जीवन यापन करना, जिससे मनुष्य कर्म फल भोगने के लिए बार–बार शरीर धारण न करे और शरीर बन्धन से छुटकारा मिल जाये। ज्ञान योग का अर्थ है मन, चित्त एवं आत्मा का ईश्वर में स्थिर हो जाना या ईश्वर से तादात्म्य स्थापित कर लेना या ईश्वर में ही मिल जाना परन्तु यह निर्गुण निराकार ईश्वर की उपासना है जो सबसे कठिन मार्ग है। परन्तु भक्तियोग या भक्ति मार्ग ईश्वर प्राप्ति का सबसे सरल एवं सहज मार्ग है, क्योंकि इसमें आपके जैसा दिखने वाला कोई व्यक्ति ही तत्त्वदर्शी गुरु के रूप में आपका सहायक होता है जिसकी कृपा से भक्त भी तद्रूप हो जाता है।

शब्द संकेत– कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, अनासक्त कर्म, योग, तत्त्वदर्शी।

गीता में भगवान श्री कृष्ण मनुष्य जन्म के मूल उद्देश्य आत्मा की मुक्ति के तीन मुख्य साधन बताते हैं जो परस्पर एक दूसरे के अनुकूल या अनुपूरक हैं परन्तु भक्तियोग संतज्ञान परंपरा से मिलता जुलता एवं आत्मा की मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

भारतीय संत परम्परा की मान्यता है कि हम सभी मनुष्य एवं अन्य जीव जन्तुओं का सांझा या सामूहिक आधार एक ही परम सत्य परमात्मा है और उस परम सत्य का निजी अनुभव ही आत्मा की मुक्ति का एकमात्र साधन है जो भक्तियोग से ही सम्भव है।

सभी प्राणियों में केवल मनुष्य को ही जीवन और जगत् के रहस्य को जान सकने का सामर्थ्य प्राप्त है, केवल मनुष्य ही अपने उचित कर्त्तव्य का निर्धारण कर, उस पर चल सकता है तथा परम सत्य का ज्ञान प्राप्त कर सकता है निश्चित ही यह मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठ क्षमता है जिसकी प्राप्ति किसी ऐसे साधु–संत की सहायता एवं मार्गदर्शन द्वारा हो सकती है जो स्वयं तत्त्वज्ञाता हो या परमात्मा का साक्षात् रूप हो यथा संत कबीर, गुरु नानक, संत रविदास प्रभृति लोग। इसलिए हमेशा आत्मज्ञानी संत को ही गुरु बनाना चाहिए एवं अपने ज्ञान में निरंतर बृद्धि करते हुए ऐसे गुरुओं की खोज करनी चाहिए। हर समय में आत्म तत्त्व के जिज्ञासुओं को गुरु की खोज करनी पड़ी है। और ऐसे गुरुओं के मार्गदर्शन को ही सगुण ब्रह्म की उपासना कहा गया है इसके पश्चात् ही हम निर्गुण एवं निराकार ईश्वर का अनुभव प्राप्त कर पाते हैं।

गीता के कर्मयोग में यही संदेश दिया गया है कि ऐसे कर्म ही बंधनकारी होते हैं जो परमात्मा के प्रति अर्पित किये जाने के भाव से नहीं होते बल्कि अहंकार, स्वत्व एवं सकाम भाव से किये जाते हैं। यह भाव गीता के मूल सिद्धांत के अनुकूल है कि कर्म का त्याग न कर, कर्मफल की इच्छा का त्याग आवश्यक है। एम0 हिरियन्ना ने इसे ''कर्म का त्याग'' न करने के बजाय ''कर्म में त्याग'' करना कहा है। इस लोक में कर्म करते हुए किस तरह परमात्मा से सामंजस्य बनाए रखा जा सकता है इसे ही कर्मयोग या निष्काम कर्म का नाम दिया गया है। कर्मयोगी संसार का त्याग नहीं करता, बल्कि वह केवल स्वार्थी इच्छाओं का परित्याग करके इस संसार में निष्काम भाव से कर्म करता है। जब गीता में निष्काम कर्म करने का उपदेश दिया जाता है तो उसका अभिप्राय किसी समाज सुधारक या दानी व्यक्ति द्वारा किये गये पुण्यकर्म की ओर नहीं होता है। बल्कि निष्काम कर्म का भाव इससे कहीं अधिक

- **असि0 प्रोफेसर – संस्कृत–विभाग, राणा प्रताप पी0जी0 कालेज, सुल्तानपुर**

सूक्ष्म और दैवी है और यह परमात्मा के लिए किए गये कर्त्तव्य का रूप धारण कर लेता है। गीता के प्रारम्भ में अर्जुन को बिना फल की इच्छा के अपने कर्त्तव्य का पालन करने को कहा जाता है। इससे अगली अवस्था में उसे अहंकारयुक्त कर्म करने की अज्ञानता से ऊपर उठने के लिए समझाया जाता है क्योंकि सूक्ष्म रूप से सभी कार्य परमात्मा के नियंत्रण में प्रकृति द्वारा किए जाते हैं।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।

अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।। 3/27

इसलिए जीव के लिए जरूरी है कि वह अपने आपको सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के आगे अर्पित कर दे, जो सर्वोच्च शक्ति, ज्ञान और प्रेम का रूप है और प्रत्येक कार्य का मूल कर्ता है।

इस प्रकार गीता के उपदेश का अंतिम संदेश अपने समय के ऐसे सच्चे गुरु–जो स्वयं परमात्मा का साक्षात् स्वरूप हैं की शरण लेने के महत्त्व को समझाता है। क्योंकि समय के सतगुरु से ही आत्मज्ञान प्राप्ति हो सकती है अन्य कोई भी विद्या पथ नहीं हो सकती है। कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग आत्मा के विकास की अलग–अलग अवस्थाएँ हैं जिन्हें आत्मा के ऊपर उठने और परमात्मा से मिलाप प्राप्त करने की आंतरिक साधना के विशेष प्रयोग के रूप में देखा जा सकता है। गीता अपने समय में प्रचलित योग के साधनों का संशोधन करके और उनमें सामंजस्य स्थापित करके, उन्हें एक इकाई के रूप में प्रस्तुत करती है ताकि वे एक ही आदर्श की प्राप्ति के लिए एक दूसरे के परस्पर सहायक एवं पूरक बन जाएँ।

गीता में कहा गया है कि परमात्मा अनेक रूप धारण करके प्रकट होता रहता है और श्रीकृष्ण उनमें से एक है इसलिए गीता किसी एक ही अवतार को महत्त्व नहीं देती इसमें उपदेश दिया गया है कि लोगों को अपने समय के संत–महात्मा से आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।। 4/34

जैसे गीता में श्रीकृष्ण भगवान् के रूप में जिज्ञासु आत्मा अर्जुन को अध्यात्मिक ज्ञान का भेद प्रकट करते हैं, उसी तरह किसी अन्य समय में परमात्मा का साक्षात् रूप धारण करके प्रकट हुआ कोई संत–महात्मा उस समय के किसी सच्चे जिज्ञासु को वैसी ही सहायता, मार्गदर्शन और उपदेश दे सकता है। यदि कोई निर्मल हृदय से परमात्मा की खोज करता है तो परमात्मा उसके पास मार्गदर्शक के रूप में पहुँच जाता है। गीता के अनुसार मनुष्य जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य परमात्मा को प्राप्त करना है परन्तु बिना किसी समर्थ और सही मार्गदर्शन देने वाले पूर्ण गुरु की सहायता के, जो स्वयं परमात्मा का साक्षात्–रूप हो, ठीक मार्ग पर चलना और अंतिम मंजिल पर पहुँच पाना प्रायः असंभव है।

विद्वानों और लेखकों के बीच गीता में बताये गये परमतत्त्व के स्वरूप के विषय में ही नहीं, बल्कि उसकी प्राप्ति के मार्ग के विषय में भी मतभेद है कुछ विद्वानों का विचार है कि गीता में कर्मयोग को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है और अन्य सभी उसके सहायक हैं। कुछ अन्य विद्वान ज्ञानयोग को सर्वोपरि होने पर जोर देते हैं। और कुछ के अनुसार भक्तियोग ही गीता का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

गीता के छठे अध्याय के सैतालीसवें श्लोक में कर्मयोगी की चर्चा करते हुए श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि सभी योगियों में (आत्मिक अभ्यास करने वालों में) वह योगी जो अपनी अंतरात्मा को मुझमें लीन करके श्रद्धा के साथ मुझे भजता है अर्थात् शब्द के अन्तर्मुख अभ्यास में लगा रहता है, वह योगी मुझे सर्वाधिक प्रिय (मान्य) है।

यहाँ श्री कृष्ण जी उस योगी की बहुत ही प्रशंसा करते हैं जो सच्चे हृदय और अपनी अंतरात्मा द्वारा परमात्मा से प्रेम करता है। परमात्मा का प्रेम सभी प्रकार के योग साधनों में सर्वश्रेष्ठ है

और सर्वाधिक सुगम है। गीता का छठा अध्याय भक्तिमार्ग की श्रेष्ठता की ओर स्पष्ट संकेत करता है क्योंकि गुरु के प्रति अपार श्रद्धा, भक्ति, विश्वास और आत्म समर्पण होना ही भक्तियोग है और तभी गुरु की कृपा प्राप्त होती है और ऐसा गुरु ही परमात्मा का साक्षात्कार करा सकता है।

इसी बात की ओर संकेत करते हुए कबीरदास जी ने भी कहा है–

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पांय

बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय।

कर्मयोग के विषय में चर्चा करते हुए गीता में जो कहा गया है उसका अभिप्राय प्रारब्ध कर्म को भी इंगित करता है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते या फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।

तुम्हारा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फल पर कदापि नहीं। इसलिए तुम कर्मों के फल का हेतु न बनना तथा तुम्हारी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो साधारणतया सभी लोग परिणाम या फल द्वारा आकर्षित होकर ही कर्म करते हैं इसलिए साफ–साफ कह दिया गया है कि तुम कर्मों के फल का हेतु न बनना परन्तु विचार करें कि यदि कर्म का कोई उद्देश्य ही नहीं, तो कर्म क्यों किया जाय, इसीलिए आगे और स्पष्ट किया गया है कि ''तुम्हारी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।'' इस श्लोक में इस बात की ओर भी संकेत किया गया है कि कुछ कर्मों के फल मनुष्य को प्रारब्ध के अधीन होकर भोगने पड़ते हैं अर्थात् पूर्व जन्मों के कर्म संचित रूप में इस जन्म में कुछ मात्रा में भोगने पड़ते हैं अतः यह निश्चित नहीं है कि जो कर्म हम करते हैं उसका निश्चित रूप से वही फल प्राप्त हो, हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है क्योंकि कुछ फल प्रारब्ध के अधीन होते हैं और बिना कर्म किये हुए हम एक क्षण भी रह नहीं सकते अतः अनासक्त भाव से कर्म करने के लिए कहा गया है जिसका अर्थ है ईश्वर को समर्पण भाव से कर्म करना। ऐसा करने पर मनुष्य के द्वारा किये हुए अच्छे या बुरे कर्मों का फल मनुष्य को नहीं भोगना पड़ता है। इसका फल परमात्मा स्वयं ले लेता है। इसी क्रम में आगे भी कहा गया है कि उस कर्मयोग का स्वरूप कैसा है–

''समत्वं योग उच्यते''

सफलता एवं असफलता में समभाव होना ही योग है। आगे फिर कहा गया है–

''योगः कर्मसु कौशलम्''

अर्थात् कर्मों में कुशलता ही योग है अर्थात् लाभ–हानि, जय–पराजय में समबुद्धि होकर अनासक्त भाव से कर्म करना ही कर्मों में कुशलता है ऐसे कर्म ईश्वर को समर्पित भाव से किये जाते हैं इससे ऐसा भाव आ जाता है कि मैं तो निमित्त मात्र हूँ। ईश्वर ही सबकुछ करने वाला है।

गीता के दूसरे अध्याय के पचासवें श्लोक में कहा गया है कि ऐसे कर्म जो कर्म से उत्पन्न फल को त्यागकर किए जाते हैं, वे जन्म–मृत्यु के बन्धन से मुक्त कर देते हैं। परन्तु मनुष्य के पूर्व के जन्मों में किये गये कर्म जो कि संचित कर्म कहलाते हैं उनका नाश कैसे सम्भव होगा और जब तक पूर्व जन्म के कर्मों का भी नाश न हो जाय, जन्म–मृत्यु से मुक्ति सम्भव नहीं है। अतः कर्मयोग से जन्म–मृत्यु का चक्र समाप्त नहीं हो सकता।

गीता के अध्याय चार श्लोक 34 में आत्मज्ञान की प्राप्त के उपाय के रूप में कहा गया है–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेक्या

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

अर्थात इस ज्ञान को तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर, उनको दण्डवत् प्रणाम करके, उनकी सेवा करके, उनसे जिज्ञासापूर्ण प्रश्न पूछकर प्राप्त करो। परमात्म तत्त्व को भलीभाँति जानने वाले ज्ञानी जन तुम्हें उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे।

गीता का यह श्लोक भक्तियोग की ओर इशारा करता है और कहता है कि ज्ञान प्राप्ति के लिए तत्त्वदर्शी गुरु की भक्ति करनी चाहिए और उसके बताये गये उपाय को अपना कर मुक्ति सम्भव हो जायेगी।

गीता के चौथे अध्याय के सैंतीसवें श्लोक में कहा गया है कि हे अर्जुन। जैसे जलती हुई अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है, उसी तरह ज्ञानरूपी अग्नि संपूर्ण कर्मों को (अर्थात् संचित कर्म एवं क्रियमाण कर्म को) जलाकर भस्म कर देती है।

परन्तु ऐसा ज्ञान भक्तियोग के माध्यम से पूर्णगुरु या तत्त्वज्ञानी गुरु की कृपा से ही संभव है।

गीता के छठें अध्याय श्लोक संख्या सैंतालीस में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि सभी योगियों में वह योगी जो अपनी अंतरात्मा को मुझमें लीन करके श्रद्धा के साथ मुझे भजता है। अर्थात् शब्द के अन्तर्मुख अभ्यास में लगा रहता है, वह योगी मुझे सर्वाधिक प्रिय है।

श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः 6/47

परमात्मा का प्रेम सभी प्रकार के योग साधनों में सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक सुगम है। गीता का यह श्लोक भक्ति मार्ग की श्रेष्ठता की ओर स्पष्ट संकेत करता है।

संत कबीर, गुरुनानक, संत रविदास प्रभृति श्रेष्ठ संतों ने कभी भी अन्य मार्ग को न अपनाकर भक्तिमार्ग को ही अपनाया और पूर्ण गुरु की शरण जाकर, उनसे उपदेश लेकर पूर्ण श्रद्धा से समर्पित होकर भक्तिमार्ग से ही ज्ञान की प्राप्ति की है। ज्ञान की प्राप्ति में गुरु की महत्ता का सभी श्रेष्ठ संतों ने बखान किया है। कबीरदास जी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि गुरु भगवान से भी बढ़कर है। जिसने ईश्वर की प्राप्ति या ज्ञान प्राप्ति या आत्मा की मुक्ति करवायी।

बलिहारी गुरु आपने गोबिन्द दियो बताय।

ईश्वर ने आत्मज्ञान की प्राप्ति या स्वयं को जानने का एक ही मार्ग बताया है और वह है पूर्णज्ञानी संत। जिस मनुष्य ने ईश्वर की कृपा प्राप्त करके ईश्वर को तत्त्वतः जाना है वही असली गुरु है और उसी की कृपा से उसके बताये हुए मार्ग पर चलकर ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है अतः भक्तियोग की सर्वश्रेष्ठता स्वयं सिद्ध है। इस रास्ते पर चलते हुए निष्काम कर्म और इन्द्रिय संयम आदि अपने आप होने लगते हैं जबरदस्ती इन्द्रिय संयम और निष्काम कर्म संभव नहीं है।

जब भक्तियोग के माध्यम से गुरु कृपा प्राप्त होती है तो आत्मिक रस अन्दर से जागृत होने लगता है और उस समय में बाहरी सभी रस फीके पड़ जाते हैं। इस विषय में एक बहुत ही सुन्दर दृष्टांत है कि जब लड़की का विवाह होता है और वह ससुराल में आ जाती है, परन्तु वह बार–बार मायके जाना चाहती है उस समय आप चाहे जितना समझायें परन्तु वह बार–बार वैसा ही करना चाहती है। परंतु जब धीरे धीरे उसको पति का प्रेम मिलने लगता है और उसके अपने बच्चे हो जाते हैं तो उसका प्रेम पति और बच्चों से अधिक हो जाता है, ऐसी परिस्थिति में जब उसे मायके जाने को कहा जाता है तो वह कहती है अभी मेरे पास समय नहीं है। इस बात से यह सिद्ध होता है कि अधिक प्रेम मिलने पर कम वाले लगाव या प्रेम शिथिल हो जाते हैं। मन की भी ठीक यही अवस्था है कि जब अनासक्त भाव से कार्य करना होता है तो यह कार्य बड़ा ही कठिन और दुरुह जान पड़ता है, परंतु गुरु के प्रति अत्यधिक गहरा प्रेम और श्रद्धा बढ़ने पर जो आत्मिक रस का अनुभव गुरु की कृपा से प्राप्त होता है वह संसार के सभी रसों को फीका कर देता है फिर मन उन–उन इन्द्रियों और उससे मिलने वाले रसों के प्रति आकर्षित नहीं होता और इस प्रकार अनासक्त कर्म अपने आप होने लगते हैं।

सारे कर्म ईश्वर के निर्देश एवं उसकी आज्ञा पालन में होने लगते हैं, यह महसूस होने लगता है कि जो कुछ हो रहा है वह ईश्वर की मर्जी से हो रहा है अतः सारे किये गये कर्म ईश्वर को समर्पित हो जाते हैं इस प्रकार इन कर्मों के अच्छे या बुरे परिणाम व्यक्ति को नहीं भोगने पड़ते। आगे गीता के सातवें अध्याय में श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि चार प्रकार के सत्कर्म करने वाले मनुष्य मुझे भजते हैं– आर्त्त (कष्ट से पीड़ित) जिज्ञासु, अर्थार्थी अर्थात् किसी विशेष उद्देश्य की कामना करने वाले और ज्ञानी जन।

इन सभी में सदा एकीभाव में अनन्य प्रेम भक्ति वाला ज्ञानी अति उत्तम है, क्योंकि ज्ञानी को मैं अत्यंत प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे प्रिय है।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।। 7/17

यहाँ भी भक्ति मार्ग पर चलने वाले ज्ञानी को ही श्रेष्ठ बताया गया है।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया। 8/22

अर्थात् वह परम पुरुष अनन्य भक्ति द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। यहाँ भी प्रेम, श्रद्धा एवं भक्ति को ही प्रभु प्राप्ति का साधन माना गया है। आगे ग्यारहवें अध्याय में कहा गया है कि हे अर्जुन अनन्य भक्ति के द्वारा मुझे इस प्रकार से जाना जा सकता है, देखा जा सकता है। और मुझमें प्रवेश किया जा सकता है।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप। 11/54

गीता के बारहवें अध्याय भक्तियोग में अर्जुन ने भगवान कृष्ण से पूछा हे केशव जो भक्तजन सदा प्रेम से युक्त होकर आपके सगुण स्वरूप की उपासना में लगे रहते हैं और जो अविनाशी, अव्यक्त (निराकार) परमात्मा की उपासना करते हैं। इन दोनों में अधिक योगवेत्ता (योग का जानकार) कौन है? इसका उत्तर देते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो अपने मन को मेरे साकार रूप में एकाग्र करके ध्यान करते हैं और परमश्रद्धा से युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमात्मा की भक्ति करते हैं उन्हें मैं सबसे श्रेष्ठ योगी मानता हूँ।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते
श्रद्धया परयोपेतास्ते में युक्ततमा मताः। 12/2

किन्तु उस अव्यक्त (अगोचर) ब्रह्म में अपने चित्त को अनुरक्त रखनेवालों की कठिनाई अधिक है। क्योंकि शरीरधारियों द्वारा अव्यक्त विषयक गति अर्थात् अगोचर, निराकार परमात्मा को पाना दुःखपूर्वक होता परन्तु साकार परमात्मा अर्थात पूर्ण गुरु की भक्ति द्वारा यही उद्देश्य अधिक सुगमता से तथा सहज ही प्राप्त किया जा सकता है। साकार स्वरूप वाले परमात्मा का आदर्श तो भक्तों के सामने होता है, जिससे वे भक्त अपने विचार, भाव और प्रेम को उसके सामने स्वाभाविक रूप से प्रकट कर सकते हैं। और यही भक्तियोग है।

निष्कर्ष : श्रीमद भगवत् गीता एवं अन्य ज्ञानी संतों के संदेशों को जानने के पश्चात् यही निष्कर्ष निकलता है कि निष्काम कर्मयोग पूर्वक जीवन जीना कोई सहज कार्य नहीं है यह एक प्रकार का कठोर आत्म संयम या हठयोग है। गीता हमेशा प्रवृत्ति मार्ग का संदेश देती है निवृत्ति मार्ग या सन्यास (गृह त्याग) की शिक्षा नहीं देती है। यह कहती है कि अपने धर्म के अनुसार कर्म करो। कर्म का त्याग कभी न करो बल्कि कर्मफल के प्रति त्याग करते हुए अनासक्त कर्म करो, इससे तुम बन्धन को नहीं प्राप्त होगे। ज्ञानयोग में भी निर्गुण निराकार परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना और उस ज्ञान में स्थिर रहने की बात कही गयी है। इसमें कहा गया है कि आध्यात्मिक ज्ञान का यज्ञ सर्वश्रेष्ठ है। सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं अर्थात् ज्ञान प्राप्त होने पर संचित कर्म एवं क्रियमाण कर्म भी पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं। जैसे जलती हुई अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है उसी तरह ज्ञानरूपी अग्नि सभी कर्मों को भस्म कर देती है।

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते। 4/33

यह ज्ञान प्राप्ति की उच्चतम अवस्था है परंतु यह ज्ञान या यह अवस्था कैसे प्राप्त हो इसका निराकरण भक्तियोग में समाहित है। गीता के अनुसार और अन्य पूर्ण संतों के अनुसार भी सगुण भक्तियोग ही ज्ञान प्राप्ति का सही उपाय है क्योंकि बिना तत्त्वदर्शी गुरु की भक्ति के ज्ञान प्राप्त करना एवं शरीर बन्धन से छुटकारा असंभव है। भक्ति का वास्तविक अर्थ परमात्मा के प्रति सर्वाधिक गहरा प्रेम है। और जब परमात्मा के प्रति गहरा प्रेम होता है। तो भक्त के अन्दर सभी सांसारिक वस्तुओं के प्रति इच्छा समाप्त हो जाती है। उसका हृदय और उसकी आत्मा इस तरह परमात्मा के प्रेम में लीन होते हैं कि वह सहज ही दुनिया की ओर से अनासक्त हो जाता है तथा अपनी इच्छा को पूरी तरह से अपने प्रियतम (परमात्मा) की इच्छा के अधीन कर देता है। गीता के अनुसार भक्ति परमात्मा की ओर जाने वाला सीधा और तेज गति से ले जाने वाला मार्ग है तथा इसका अभ्यास आसानी से किया जा सकता है जबकि ज्ञानमार्ग को समझ पाना तथा इसका अभ्यास करना कठिन है।

गीता में कहा गया है कि भक्तिमार्ग सभी विद्याओं का राजा है क्योंकि स्वयं के जैसा आकार वाला एक गुरु इसमें सहायक होता है जबकि ज्ञान मार्ग में अव्यक्त परमात्मा में अपने चित्त को अनुरक्त करना पड़ता है। अतः परमात्मा के अदृश्य होने के कारण भक्त के लिए ज्ञानमार्ग पे चलना कठिन है।

भक्तिमार्ग परमात्मा के साकार रूप तत्वदर्शी गुरु की भक्ति से शुरू होता है और सीधे परमात्मा की ओर ले जाता है जैसे कबीर, गुरुनानक, संत रविदास प्रभृति गुरू। यह भक्तिमार्ग ज्ञात से अज्ञात की ओर ले जाने वाला मार्ग है। इस प्रकार अव्यक्त स्वरूप परमात्मा गुरु की सहायता से व्यक्त हुए के समान अनुभूत होने लगता है। आत्मा का शरीर के बन्धन से छुटकारा तभी हो सकता है जब संचित कर्म और क्रियमाण कर्म पूरी तरह से नष्ट हो जायें एवं प्रारब्ध कर्म या भाग्य का भुगतान शरीर द्वारा भोग कर समाप्त हो जाय क्योंकि प्रारब्ध कर्म के विषय में सृजनकर्ता परमात्मा ने ही यह नियम बनाया है कि प्रारब्ध कर्मों का भुगतान करने पर ही यह समाप्त होता है। अन्य कोई उपाय इस विषय में नहीं है।

इस प्रकार क्रियमाण कर्म तो निष्काम, कर्मयोग से समाप्त हो सकते हैं किन्तु संचित कर्म जोकि पूर्व के कई जन्मों के इकट्ठा कर्म होते हैं उनका नाश तो गुरु या परमात्मा की कृपा से ही सम्भव है क्योंकि परमात्मा ही सर्वशक्तिमान है और जब मनुष्य अनन्य भक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँचता है तो परमात्मा कृपा एवं दया पूर्वक उसके सभी कर्मों का नाश कर देते हैं और मनुष्य शरीर बन्धन से छुटकारा पा जाता है तथा परमात्मा में समा कर उसी का रूप हो जाता है। इस प्रकार भक्तियोग से अनासक्त कर्म या निष्काम कर्म भी अपने आप होने लगते हैं तथा ज्ञान की प्राप्ति भी हो जाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1– श्रीमद् भगवद्गीता (सार संदेश)–राधास्वामी सत्संग व्यास
2– वेदान्तसार
3– कबीर ग्रन्थावली
4– रामचरित मानस
5– महाभारत